



प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

एकल पीठ: माननीय श्री मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव, न्यायाधीश

दांडिक अपील क्रमांक-1074/1993

अपीलार्थीगण

त्रिभुवन सिंह ठाकुर व अन्य

बनाम

मध्यप्रदेश राज्य(वर्तमान में छत्तीसगढ़)

प्रत्यर्थी

निर्णय

दिनांक 14 सितम्बर 2012 को निर्णय हेतु सूचीबद्ध करें ।

सही/-

मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव,

न्यायाधीश





छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

एकल पीठ: माननीय श्री मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव, न्यायाधीश

दांडिक अपील क्रमांक-1074/1993

अपीलार्थीगण

त्रिभुवन सिंह ठाकुर व अन्य

बनाम

मध्यप्रदेश राज्य (वर्तमान में छत्तीसगढ़)



उपस्थिति

अपीलार्थी की ओर से:- श्री प्रफुल्ल भारत, अधिवक्ता

राज्य की ओर से:- श्री वैभव गोवर्धन, पैनल अधिवक्ता

निर्णय

(14 सितम्बर 2012 को घोषित)



1. यह दण्डिक अपील, विद्वान विशेष न्यायाधीश, रायपुर द्वारा विशेष प्रकरण क्रमांक 38/1991 में पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश दिनांक 30.10.1993 के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है, जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थीगण को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (एतस्मिन्नपश्चात् "1988 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 7 एवं धारा 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के तहत दोषसिद्ध किया गया है और प्रत्येक अपीलार्थी को 1 वर्ष के सश्रम कारावास तथा 500/- रुपये के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है और अर्थदण्ड के भुगतान में व्यतिक्रम होने पर, 5 माह का अतिरिक्त सश्रम कारावास भुगतान का आदेश दिया गया है। दोनों सजाओं को साथ-साथ चलाने का निर्देश दिया गया है। अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलार्थी बलराम की मृत्यु हो गई ।

2. मामले के अभिलेखों और विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय से प्रकट होने वाली अभियोजन की कहानी इस प्रकार है कि दिनांक 03.03.1986 से 05.03.1986 की अवधि के दौरान, मृतक अपीलार्थी-बलराम, नगर पालिका परिषद, महासमुंद में संपत्ति कर अधिकारी के रूप में पदस्थ एवं कार्यरत था तथा अपीलार्थी हरिश्चंद्र यादव नगर पालिका परिषद, महासमुंद में वसूली अधिकारी के रूप में पदस्थ एवं कार्यरत था। दिनांक 03.03.1986 को, परिवादी-लोकनाथ साहू (अ.सा-7) ने अपने मकान क्रमांक-189, जो वार्ड क्रमांक-8 (नया वार्ड क्रमांक-16) में स्थित है,



का कब्जा प्रमाण पत्र जारी करने के लिए नगर पालिका के कार्यालय में एक आवेदन दिया। दिनांक 03.03.1986 और दिनांक 05.03.1986 को जब परिवादी-लोकनाथ ने प्रमाण पत्र प्राप्त करने के संबंध में अपीलार्थी से संपर्क किया, तब प्रत्येक अपीलार्थी ने 100/- रुपये रिश्त की मांग की और यह कहा कि यदि रिश्त नहीं दी गई, तो अपीलार्थीगण बिना किसी परिणाम के उसे भटकाते रहेंगे। आगे अभियोजन का मामला यह है कि परिवादी-लोकनाथ को दिनांक 05.03.1986 को नगर पालिका के कार्यालय में रिश्त की राशि के साथ आने के लिए कहा गया था। चूंकि शिकायतकर्तारिश्त देने का इच्छुक नहीं था, इसलिए, उसके द्वारा पुलिस अधीक्षक (सतर्कता) के समक्ष एक शिकायत (प्रदर्श पी-1) प्रस्तुत किया गया। शिकायत का सत्यापन डी.एस.पी.श्री एस.के. वर्मा (अ.सा-9) और पंच साक्षी एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) द्वारा किया गया। शिकायत के सत्यापन के बाद, शिकायतकर्ताद्वारा 50/- रुपये के 4 करेंसी नोट, कुल 200/- रुपये पेश किए गए और उन नोटों के नंबर को लिखा गया। उन करेंसी नोटों पर 'फिनोफ्थलीन पाउडर' लगाया गया। तत्पश्चात, शिकायतकर्ता की तलाशी ली गई और उसे अपने पास कोई अन्य करेंसी नोट, कागज या सामान रखने मना किया गया तथा करेंसी नोटों को शिकायतकर्ता की जेब में इस निर्देश के साथ रखा गया कि वह अपीलार्थीगण को देने से पहले उन्हें न छुए और न ही करेंसी नोट देने से पहले या बाद में हाथ



मिलाए। पंच साक्षियों की उपस्थिति में शिकायतकर्ता को सोडियम कार्बोनेट के साथ फिनोफ्थलीन पाउडर की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन भी दिखाया गया और उस घोल को एक बोतल में रखकर सील किया गया। 'प्री-ट्रैप पंचनामा' (प्रदर्श पी-2) तैयार किया गया, जिसमें पूरी कार्यवाही को अभिलिखित किया गया और पंच साक्षियों द्वारा हस्ताक्षरित किया गया।

इसके पश्चात, ट्रैप दल, पंच साक्षियों और शिकायतकर्ता के साथ

महासमुंद्र स्थित नगर पालिका कार्यालय के लिए रवाना हुए। आगे अभियोजन

का मामला यह है कि परिवादी-लोकनाथ कार्यालय के भीतर गये और प्रत्येक

अपीलार्थी को रिश्त की राशि दिये और फिर बाहर आकर ट्रैप दल को इशारा

किया, जिसके तुरंत बाद ट्रैप दल के सदस्य मौके पर पहुंचे और अपीलार्थीगण

को पकड़ लिया। प्रत्येक अपीलार्थी के हाथ सोडियम कार्बोनेट के घोल से

धुलवाए गए, जिसका रंग गुलाबी हो गया। हाथों के धोवन को अलग-अलग

बोतलों में रखा गया और सील किया गया। प्रत्येक अपीलार्थी ने रिश्त लेना

स्वीकार किया तथा तलाशी लेने पर, प्रत्येक अपीलार्थी की फुल पैंट की जेब से

रिश्त की राशि बरामद किया गया। अपीलार्थीगण से बरामद नोटों के नंबर को

प्री ट्रैप-पंचनामा में दर्ज नोटों के नंबरों से मिलाया गया। पहने हुए कपड़ों को

भी धुलवाया गया और उस धोवन को भी अलग-अलग बोतलों में सील किया





गया। ट्रेप की कार्यवाही में प्रयुक्त करेंसी नोटों को प्रदर्श पी-3 और पी-5 के माध्यम से जब्त किया गया। शिकायतकर्ता के हाथ भी सोडियम कार्बोनेट मिश्रित पानी से धुलवाए गए, जिसका रंग गुलाबी हो गया और उसके हाथों के धोवन को भी अलग से एक बोतल में रखकर सील किया गया। प्रमाण-पत्र जारी करने से संबंधित सुसंगत आवेदन आदि को भी प्रदर्श पी-10 के माध्यम से जब्त किया गया। 'ट्रेप पंचनामा' प्रदर्श पी-11 तैयार किया गया। घटना स्थल का नक्शा प्रदर्श पी-13 तैयार किया गया। देहाती नालिशी प्रदर्श पी-14 दर्ज किया गया और उसके पश्चात प्रथम सूचना प्रतिवेदन प्रदर्श पी-22 दर्ज किया गया। दिनांक 07.03.1986 के ज्ञापन (प्रदर्श पी-5) के माध्यम से, ऊपर वर्णित हाथ के धोवन आदि से युक्त सीलबंद बोतलों को रासायनिक परीक्षण के लिए विधि विज्ञान प्रयोगशाला, सागर भेजा गया और एफ.एस.एल से प्राप्त प्रतिवेदन ने प्रत्येक अपीलार्थी के हाथों के धोवन, करेंसी नोटों के धोवन और शिकायतकर्ता के हाथों के धोवन में फिनोफथलीन पाउडर और सोडियम कार्बोनेट की उपस्थिति की पुष्टि की। नगर पालिका, महासमुंद के प्रशासक द्वारा आदेश दिनांक 19.03.1990 के माध्यम से प्रत्येक अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 161 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (जिसे एतस्मिनपश्चात "1947 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 5(2) सहपठित





धारा 5(1)(डी) के तहत अपराध कारित करने हेतु अभियोजन की मंजूरी दिया गया। सामान्य जांच पूरी होने पर, विशेष न्यायाधीश, रायपुर के न्यायालय में अभियोग पत्र प्रस्तुत किया गया, जिन्होंने अभियोग पत्र में कथित अपराध के सम्बन्ध में दिनांक 26.06.1991 को आरोप विरचित किया। अपीलार्थीगण ने अपराध करना अस्वीकार किया तथा रिश्त मांगने या स्वीकार करने से इनकार किया। जिसके पश्चात् अपीलार्थीगण का विचारण प्रारंभ किया गया।

3. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने कुल 9 साक्षियों का परीक्षण कराया। इसके पश्चात्, अपीलार्थीगण के विरुद्ध आए अभियोगात्मक परिस्थितियों और साक्ष्यों के संबंध में उनका परीक्षण किया गया। अपने परीक्षण में, अपीलार्थीगण ने उनके विरुद्ध प्रस्तुत अभियोगात्मक परिस्थितियों और साक्ष्यों से इनकार किया और यह बचाव प्रस्तुत किया कि शिकायतकर्ता पर गृह कर बकाया था तथा जिस संबंध में अपीलार्थी गण टीप लिखकर आपत्ति करते थे, इसलिए उन्हें झूठा फंसाया गया है। आगे यह भी कहा गया है कि ट्रैप की कार्यवाही बंद कमरे के भीतर, किसी भी स्वतंत्र साक्षी की अनुपस्थिति में किया गया था।

4. अभियोजन के मामले पर भरोसा करते हुए, विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रत्येक अपीलार्थी को कथित अपराध के लिए दोषी पाया और उन्हें कठोर कारावास



का दंडादेश दिया तथा जुर्माना भी अधिरोपित किया, जिसका विवरण ऊपर दिया गया है।

5. "दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश की औचित्यता तथा वैधता को चुनौती देते हुए, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि संपूर्ण दाण्डिक कार्यवाही और पारिणामिक दोषसिद्धि, अभियोजन हेतु प्राप्त मंजूरी के अवैध एवं अमान्य होने के कारण दूषित है; क्योंकि उक्त तथाकथित प्रशासक, जिन्होंने

अभियोजन हेतु मंजूरी प्रदान किया था, राज्य सरकार द्वारा म.प्र./छ.ग.

नगरपालिका अधिनियम, 1961 (जिसे इसके पश्चात "1961 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 328 (3) (बी) के तहत अपेक्षित रूप में नियुक्त नहीं किया गया

था। उनके अनुसार, जिस प्रशासक ने अभियोजन हेतु मंजूरी प्रदान किया था, उन्हें

परिषद के भंग(विघटन) होने के कारण अपर कलेक्टर द्वारा प्रशासक के रूप में

कार्य करने हेतु नियुक्त किया गया था। अतः, उक्त प्रशासक को अपीलार्थीगण के

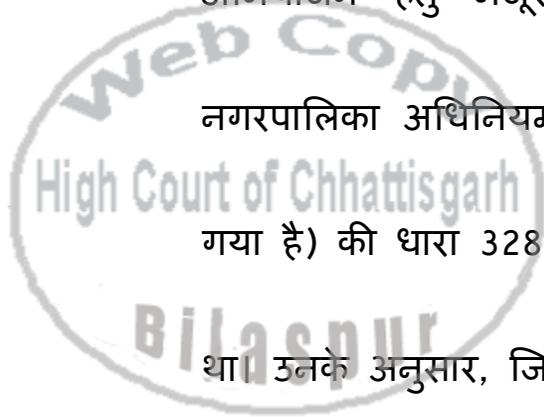
नियुक्ति प्राधिकारी की हैसियत से, अभियोजन हेतु मंजूरी प्रदान करने की वैधानिक

शक्ति का प्रयोग करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। इस प्रकार, मंजूरी देने का

आदेश स्वयं आरंभतः शून्य है और इसलिए, अभियोजन हेतु मंजूरी देने वाला ऐसा

आदेश जो शून्य है, के आधार पर अपीलार्थीगण का विचारण नहीं किया जा सकता

था। अतः, अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि दूषित है। तत्पश्चात यह तर्क दिया गया है



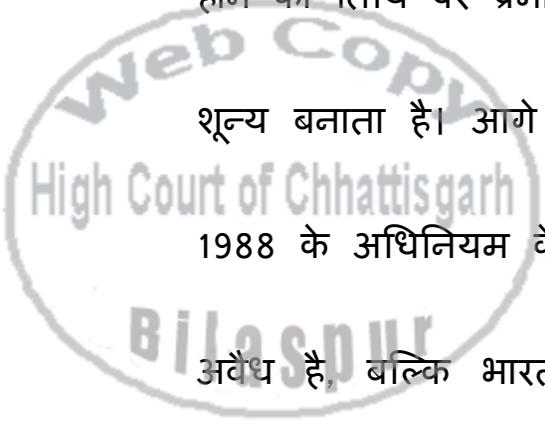


कि अन्यथा भी मंजूरी देने वाला आदेश तात्त्विक रूप से दोषपूर्ण है, क्योंकि अभियोजन यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि सक्षम प्राधिकारी ने अभियोजन हेतु मंजूरी देने का निर्णय लेने से पूर्व दांडिक मामले के सुसंगत अभिलेखों पर सम्यक और उचित रूप से अपने विवेक का प्रयोग किया था। इसलिए, उचित मंजूरी के अभाव में भी अभियोजन और उसके परिणामस्वरूप हुई दोषसिद्धि विधि के अनुसार संधारणीय नहीं है। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया कि यद्यपि कथित अपराध कारित होने की तिथि पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 लागू था और यहाँ तक कि अपीलार्थीगण के विरुद्ध अभियोजन हेतु मंजूरी भी 1947 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत दी गई थी, फिर भी अपीलार्थीगण के विरुद्ध 1988 के अधिनियम की धारा 7 एवं 13(1)(डी)/13(2) के तहत अपराध कारित करने के आरोप विरचित किए गए, यह अधिनियम कथित अपराध कारित किये जाने की तिथि के बाद प्रभावशील हुआ था। चूंकि दोनों अधिनियमों के तहत अपराध तात्त्विक रूप से भिन्न और विशिष्ट हैं, इसलिए अपीलार्थीगण को न तो अभियोजित किया जा सकता था और न ही ऐसी दांडिक विधि के तहत उनका विचारण किया जा सकता था जो कथित अपराध कारित किये जाने की तिथि को प्रभावशील नहीं था। 1988 के अधिनियम के अधीन अपराध अधिक कठोर दंड से दंडनीय है, जिसमें न्यूनतम कारावास दिया



जाना भी आवश्यक है, जबकि 1947 के अधिनियम के अधीन न तो किसी न्यूनतम दंड का प्रावधान है और न ही दंड उतना कठोर है जितना कि 1988 के अधिनियम के अधीन है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को 1988 के अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया, जिससे उनके हितों पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अतः, एक ऐसी दांडिक विधि के तहत अपराध कारित करने के लिए अपीलार्थीगण का विचारण और दोषसिद्धि, जो अपराध कारित होने की तिथि पर प्रभावशील नहीं था, विचारण और दोषसिद्धि दोनों को आरंभतः

शून्य बनाता है। आगे यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त वर्णित सभी कारणों से, 1988 के अधिनियम के तहत अपीलार्थी का अभियोजन और दोषसिद्धि न केवल अवैध है, बल्कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के तहत गारंटीकृत अपीलार्थीगण के मौलिक अधिकार का उल्लंघन भी है। 'मांग' के बिंदु पर, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से यह तर्क दिया कि शिकायत (प्रदर्श पी-1) और परिवादी- लोकनाथ (अ.सा-7) के बयान में बताए गए सभी तात्विक विवरणों में गंभीर और तात्विक विरोधाभास के दृष्टिगत, रिश्त की मांग की कहानी अत्यंत संदेहास्पद है। शिकायतकर्ता की अपीलार्थीगण के साथ शत्रुता थी और उसका अपना स्वार्थ सिद्ध करने का एक निश्चित हेतुक था, क्योंकि उसका कर बकाया था जिसका भुगतान उसके द्वारा नहीं किया जा रहा था, और समय-समय





पर अपीलार्थीगण करों के भुगतान न करने के संबंध में आपत्तियां दर्ज कर रहे थे, जो शिकायतकर्ताके मार्ग में बाधा बन रहा था। अतः, शिकायतकर्ताने झूठा फंसाया है। अपीलार्थीगण द्वारा मांग किये जाने की कहानी इसलिए भी संदेहास्पद है क्योंकि अपीलार्थीगण शिकायतकर्ता द्वारा चाहे गए प्रमाण-पत्र जारी करने के लिए सक्षम ही नहीं थे, इसलिए, अपीलार्थीगण के पास रिश्त की मांग करने का कोई हेतुक नहीं था। मांग किये जाने की कहानी पर आगे इसलिए भी संदेह उत्पन्न होता है क्योंकि अन्य किसी भी परिस्थिति या ट्रेप दल के साथ गए किसी भी पंच साक्षियों के मौखिक साक्ष्य से मांग की कोई स्वतंत्र संपुष्टि नहीं हुई है, और उनमें से किसी ने भी यह नहीं कहा है कि अपीलार्थीगण द्वारा शिकायतकर्ता से कोई मांग की गई थी, जिसकी पूर्ति के लिए शिकायतकर्ता ने रिश्त की राशि दी थी। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि स्वतंत्र पंच साक्षी एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा.8) 'स्टॉक साक्षी' (अभ्यस्त साक्षी) हैं, जिन्हें सतर्कता कार्यालय द्वारा आयोजित विभिन्न ट्रेप कार्यवाही में बार-बार गवाहों के रूप में बुलाया जाता है, जैसा कि विवेचना अधिकारी (अ.सा-9) के साक्ष्य से सिद्ध होता है। अतः, 'स्टॉक साक्षी' (अभ्यस्त साक्षी) के साक्ष्य, और साथ ही मांग की संदिग्ध कहानी के आधार पर, अभियोजन के उस पक्ष को बल नहीं दिया जा सकता जो स्वीकृति और बरामदगी से संबंधित है। यह भी तर्क दिया गया कि यदि



यह मान भी लिया जाए कि अपीलार्थीगण से करेंसी नोट (मुद्रा नोट) बरामद किए गए थे, तो वे शिकायतकर्ता द्वारा अपीलार्थीगण के पास यह कहकर जमा किए गए थे कि वे बकाया कर के भुगतान के लिए थे, इनपरिस्थितियों को देखते हुए यह स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से तर्कसंगत, संभावित और विश्वसनीय है, क्योंकि अपीलार्थी क्रमांक-1 'संपत्ति कर अधिकारी' थे और अपीलार्थी क्रमांक-2 'कर वसूली अधिकारी' थे। इसलिए, 'संभाव्यता की प्रबलता' के आधार पर, अपीलार्थीगण का बचाव स्वीकार किए जाने योग्य है और वे संदेह का लाभ प्राप्त कर दोषमुक्त होने के हकदार हैं। अंत में यह तर्क दिया गया कि यदि स्वीकृति और बरामदगी को सिद्ध मान भी लिया जाए, तो मांग के प्रमाण के अभाव में, केवल स्वीकृति और बरामदगी को अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने का आधार नहीं बनाया जा सकता।

अपने तर्क के समर्थन में अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने सुभाष पर्वत सोनवाने बनाम गुजरात राज्य¹ राज्य पुलिस निरीक्षक विशाखापट्टनम बनाम सूर्य सँकराम कारी² मोहम्मद इकबाल अहमद बनाम आंध्रप्रदेश राज्य³ तमिलनाडु राज्य बनाम एम एम राजेंद्रन⁴ मनोरंजन प्रसाद चौधरी बनाम बिहार राज्य⁵, अरुण कुमार पांडेय बनाम मध्यप्रदेश राज्य⁶, राजेश सिंह बनाम मध्यप्रदेश राज्य⁷, जगन

12002 CRI.L.J 2787
2(2006) 3 SCC (Cri) 225
31979 SCC (Cri) 926
4(1998) 9 SCC 268
52004SCC (Cri) 1213
62011(1) CGLJ 99
72007 (2) MPHT 76



एम शेषाद्रि बनाम तमिलनाडु राज्य⁸ आनंद प्रकाश व अन्य बनाम हरियाणा राज्य⁹
टी सुब्रमनियन बनाम तमिलनाडु राज्य¹⁰ केरल राज्य व अन्य बनाम सी पी राव¹¹
पन्नालाल दामोदर राठी बनाम महाराष्ट्र राज्य¹² आंध्रप्रदेश राज्य बनाम टी
वेंकटेश्वर राव¹³ सी.एम. गिरीश बाबू बनाम सी.बी.आई. कोचीन केरल उच्च
न्यायालय¹⁴ पंजाबराव बनाम महाराष्ट्र राज्य¹⁵ सोम प्रकाश बनाम पंजाब राज्य¹⁶
तथा गुलाम महमूद ए मलिक बनाम गुजरात राज्य¹⁷ के मामलों में दिये गये
निर्णयों का अवलंब लिया है।

6. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित
दोषसिद्धि के निर्णय और दंड के आदेश का समर्थन करते हुए यह तर्क प्रस्तुत
किया कि सक्षम प्राधिकारी, अर्थात् प्रशासक जो परिषद की शक्तियों का प्रयोग कर
रहे थे, जो अपीलार्थीगण के नियुक्ति प्राधिकारी हैं, द्वारा उचित और वैध मंजूरी
प्रदान किया गया था। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि
विद्वान विचारण न्यायालय ने इस पहलू पर विचार किया है और यह पाया है कि
विचारण के दौरान अपीलार्थीगण ऐसा कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत करने में असफल
रहे हैं जिससे यह दर्शित हो कि प्रशासक, जिन्होंने मंजूरी दी थी, की नियुक्ति

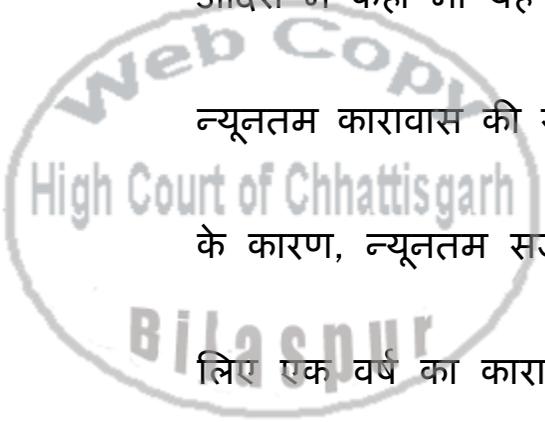
82002 CRI.L.J 2982
92008 CRI.L.J 1825
10(2006) 1 SCC (Cri) 401
11(2011) 6 SCC 450
12AIR 1979 SC 1191
13AIR 2004 SC 1728
14(2009) 3 SCC 779
152004 SCC (Cri) 1130
161992 CRI LJ 490
171981 SCC (Cri) 586



किसी भी तरह से अवैध या अमान्य थी। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता वे अवैध रूप से प्रशासक के पद पर काबिज़ थे। नियुक्ति का वह आदेश, जिसे विचारण के दौरान इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था, इस स्तर पर साक्ष्य के रूप में पूर्ण रूप से अस्वीकार्य है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि संपूर्ण विचारण के दौरान अपीलार्थीगण के पास यह साबित करने का पर्याप्त अवसर था कि मंजूरी देने वाला प्राधिकारी वैध रूप से नियुक्त नहीं किया गया था, परंतु अपीलार्थीगण इसे साबित करने में असफल रहे और विचारण न्यायालय ने उचित रूप में इस तर्क को यह अभिनिर्धारित करते हुए अस्वीकार कर दिया कि इस सम्बन्ध में कोई भी तात्त्विक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। अपीलार्थीगण ने अभिलेख पर एक साधारण छायाप्रति संलग्न किया है जिसका कोई विधिक महत्व नहीं है। जब तक दस्तावेजों के साथ अतिरिक्त साक्ष्य को अभिलेख पर लेने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 391 के तहत उचित आवेदन न दिया जाए, तब तक दस्तावेजों को आकस्मिक रूप से दाखिल करने हेतु दिए गये तर्कों को नजरअंदाज किया जाना चाहिए। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क प्रस्तुत किया कि अन्यथा भी यदि कोई प्रतिकूल प्रभाव साबित नहीं होता है, ऐसी स्थिति में अपीलार्थीगण को इस बिंदु पर और नहीं सुना जा सकता, क्योंकि अधिनियम की धारा 19(3) के प्रावधान किसी आरोपी को दोषसिद्धि के



निर्णय के विरुद्ध ऐसे आधार उठाने की अनुमति नहीं देता हैं। आगे यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि, भले ही अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के तहत अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए हों, फिर भी न तो विचारण और न ही दोषसिद्धि अपास्त किए जाने योग्य है, क्योंकि अपीलार्थीगण यह साबित करने में असफल रहे हैं कि इससे उन्हें कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान विचारण न्यायालय के आदेश में कहीं भी यह अभिलिखित नहीं है कि यद्यपि न्यायालय केवल जुर्माना या न्यूनतम कारावास की सजा देने का इच्छुक था, किंतु कुछ शमनकारी परिस्थितियों के कारण, न्यूनतम सजा के वैधानिक प्रावधान के चलते प्रत्येक सिद्ध अपराध के लिए एक वर्ष का कारावास देना पड़ा। चूँकि, 1947 के पुराने अधिनियम के तहत भी उतनी ही सजा दी जा सकती थी, इसलिए कोई प्रतिकूल प्रभाव कारित नहीं हुआ है। सभी महत्वपूर्ण पहलुओं में, अपराध का मुख्य तत्व, जैसा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(डी) में निहित है, वह 1988 के अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(डी) में निहित दंडात्मक प्रावधानों के समान ही है; अतः कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है और इस कारण से, अपीलार्थीगण किसी भी लाभ के हकदार नहीं हैं और न ही इसका विचारण या अंतिम दोषसिद्धि पर कोई दूषित प्रभाव पड़ता है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने





आगे यह तर्क दिया कि चूंकि मंजूरी देने का आदेश स्वयं सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेज के विस्तृत परीक्षण को दर्शाता है, इसलिए अभियोजन पक्ष को यह साबित करने के लिए की मंजूरी दिये जाने हेतु विवेक का प्रयोग किया गया था, किसी अतिरिक्त साक्ष्य को प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। उनके अनुसार, आदेश स्वयं पुलिस द्वारा जांच के दौरान एकत्र किये गये सुसंगत साक्ष्य पर विवेक के गहन और व्यापक प्रयोग को प्रदर्शित करता है। इसलिए, मंजूरी का आदेश उस आधार पर किसी भी अवैधता से ग्रस्त नहीं है। आगे यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि शिकायतकर्ता के साथ-साथ शिकायतकर्ता- लोकनाथ (अ.सा-7) का बयान सुसंगत है और मांग के संबंध में शिकायतकर्ता की गवाही पर अविश्वास करने हेतु कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास सामने नहीं आया है। परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से दर्शित करती हैं कि शिकायतकर्ता कब्जा प्रमाण पत्र प्राप्त करने का इच्छुक था, जो मांगी गई राशि का भुगतान न किये जाने के कारण अपीलार्थी द्वारा जारी नहीं किया जा रहा था इस प्रकार अपीलार्थीगण ने रिश्त की मांग करके अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया। जहाँ तक स्वतंत्र सम्पुष्टि का प्रश्न है, मामले की परिस्थितियाँ ऐसी नहीं हैं कि मांग पर केवल इस आधार पर अविश्वास किया जाए कि कोई स्वतंत्र सम्पुष्टि उपलब्ध नहीं है। आगे यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि रिश्त की स्वीकृति और बरामदगी को ठोस,



तर्कसंगत और सुसंगत साक्ष्यों द्वारा सिद्ध किया गया है, जिसे स्वतंत्र पंच गवाहों के बयानों का समर्थन प्राप्त है। अपीलार्थी के कब्जे से करेंसी नोट बरामद किए गए थे, जिसे कई अभियोजन द्वारा दिये गये साक्ष्यों द्वारा सिद्ध किया गया है। अपीलार्थीगण के हाथों का धोवन और उनके द्वारा पहने गए कपड़ों के धोवन का एफ.एस.एल. द्वारा परीक्षण किया गया तथा उनमें फिनोलफथलीन पाउडर के अंश पाए गए, जो अपीलार्थीगण द्वारा रिश्तत स्वीकार करने और उसे लेने के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले की दृढ़ता से संपुष्टि करते हैं। उन्होंने आगे यह तर्क प्रस्तुत किया कि अपीलार्थीगण का यह बचाव कि राशि कर के बकाया के रूप में प्राप्त हुई थी, न तो संभावित है और न ही विश्वसनीय, और यह 'संभावना की प्रबलता' की शर्त को पूरा नहीं करता है; इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इसे उचित रूप में अस्वीकार कर दिया गया है। अपनी तर्कों के समर्थन में, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने **अशोक शेरिंग भूटिया बनाम सिक्किम राज्य**¹⁸, **बालसुब्रमण्यम बनाम राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक**¹⁹ और **मध्य प्रदेश राज्य बनाम जियालाल**²⁰ के प्रकरणों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया है।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना तथा अभिलेखों का परिशीलन किया।

18(2011) 4 SCC 402

19(2010) 9 SCC 20

20(2009) 15 SCC 72



8. दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश की औचित्यता तथा वैधता को चुनौती देने का एक प्रमुख आधार यह है कि अभियोजन हेतु मंजूरी ऐसे प्राधिकारी द्वारा दी गई है जो विधि के तहत सक्षम नहीं है। अभियोजन हेतु मंजूरी आदेश दिनांक 19.3.1990 अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किया गया है और इसे प्रदर्श पी-24 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उक्त आदेश नगर पालिका परिषद, महासमुंद के प्रशासक, प्रवीर कृष्ण द्वारा पारित किया गया है। विचारण में दर्ज दिनांक 28.9.1993 की आदेश पत्रक के अवलोकन से यह दर्शित होता है कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत मंजूरी आदेश को अपीलार्थी/अभियुक्त द्वारा स्वीकार किया गया था और उक्त स्वीकारोक्ति के आधार पर ही इसे साक्ष्य में प्रदर्श पी-24 के रूप में स्वीकार किया गया था, जबकि अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेखों से ऐसा कोई दस्तावेजी या मौखिक साक्ष्य अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है, जो बचाव में लिये गये इस तर्क की पुष्टि कर सके कि जिस प्रशासक ने अभियोजन हेतु मंजूरी प्रदान की थी, उनकी नियुक्ति 1961 के अधिनियम की धारा 328 (3)(बी) में निहित प्रावधानों के अनुसार वैध रूप से नहीं हुई थी। अभियोजन हेतु मंजूरी के आदेश में स्पष्ट रूप से अभिलिखित है कि इसे परिषद के प्रशासक द्वारा अनुमोदित किया गया है। अपीलार्थीगण ने अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई मामला प्रस्तुत नहीं किया कि परिषद भंग नहीं हुई थी, और न ही ऐसा कोई अन्य तथ्य पेश किया



जिससे यह पता चले कि प्रशासक की नियुक्ति विधि के अनुसार नहीं थी या 1961 के अधिनियम की धारा 345 के तहत राज्य सरकार द्वारा किसी अन्य प्राधिकारी के पक्ष में शक्तियों का प्रत्यायोजन नहीं किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के कंडिका 41 में यह निष्कर्ष उचित रूप से दर्ज किया है कि किसी भी महत्वपूर्ण दस्तावेज के अभाव में, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रशासक की नियुक्ति किसी भी प्रकार से अवैध थी। विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित विचारण की कार्यवाही से यह प्रकट होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपीलार्थीगण का परीक्षण किया गया था और उनका कथन दिनांक 9.10.1993 को अभिलिखित किया गया था। उस दिनांक को अपीलार्थीगण ने यह कथन किया था कि वे बचाव में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करना चाहते हैं। अतः, बचाव पक्ष का साक्ष्य समाप्त कर दिया गया।

9. इस अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलार्थीगण द्वारा दिनांक 1.9.1997 को एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें अपर कलेक्टर (अतिरिक्त कलेक्टर), रायपुर द्वारा पारित उस आदेश की प्रति, जिसके माध्यम से प्रवीर कृष्ण को नगर पालिका परिषद का प्रशासक नियुक्त किया गया था, को अभिलेख पर लेने की प्रार्थना की गई थी। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत करते हुए इस न्यायालय



का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया कि उक्त आदेश अतिरिक्त कलेक्टर, कलेक्टर कार्यालय, रायपुर द्वारा पारित किया गया है, जबकि प्रशासक नियुक्त करने हेतु सक्षम प्राधिकारी राज्य सरकार है, जैसा कि 1961 के अधिनियम की धारा 328 (3) (ख) में विनिर्दिष्ट किया गया है।

प्रथम दृष्टया, यह आवेदन

साक्ष्य में एक नया दस्तावेज अभिलेख पर लाने के लिए प्रस्तुत किया गया है,

जिसे अपीलार्थीगण द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया

था। संपूर्ण आवेदन में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि उक्त दस्तावेजों को

अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर क्यों नहीं रखा जा सका था।

अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत लिखित कथन से यह ज्ञात होता है कि प्रवीर कृष्ण की

अक्षमता का तर्क इस आधार पर लिया गया था कि प्रवीर कृष्ण को प्रशासक

नियुक्त करने वाला राज्य सरकार का कोई आदेश/अधिसूचना अस्तित्व में नहीं है।

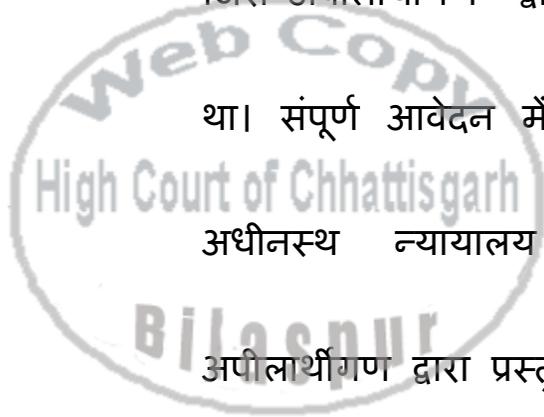
न तो अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष और न ही इस न्यायालय के समक्ष यह

प्रकरण है कि अतिरिक्त कलेक्टर, कलेक्टर कार्यालय, रायपुर को 1961 के

अधिनियम की धारा 345 के प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकार द्वारा कोई शक्ति

प्रत्यायोजित नहीं की गई थी। 1961 के अधिनियम की धारा 345, राज्य सरकार

द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 328 के तहत शक्तियों को किसी अन्य प्राधिकारी को





प्रत्यायोजित करने की अनुमति देती है। दिनांक 1.9.1997 के आवेदन में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि रायपुर के अतिरिक्त कलेक्टर, जिन्होंने प्रवीर कृष्ण को प्रशासक नियुक्त किया था, उन्हें 1961 के अधिनियम की धारा 345 में निहित प्रावधानों के अनुसार धारा 328 के तहत शक्तियाँ प्रत्यायोजित नहीं की गई थीं। इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय के समक्ष उक्त दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थीगण को पर्याप्त और समुचित अवसर उपलब्ध होने के बावजूद, इसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। उक्त आवेदन में ऐसा कोई भी औचित्य नहीं दर्शाया गया है जो इस न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 391 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए बाध्य करे। अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार करना अभियोजन या बचाव पक्ष द्वारा केवल मांगे जाने पर की जाने वाली कोई सामान्य प्रक्रिया नहीं है। यह सामान्य नियम का एक अपवाद है और इस शक्ति का प्रयोग अत्यंत सावधानी से तथा केवल वहीं किया जाना चाहिए जहाँ अतिरिक्त साक्ष्य देने की अनुमति न देने पर न्याय विफल होने की संभावना हो। चूँकि अपीलार्थीगण /अभियुक्तगण को पर्याप्त अवसर प्रदान किया जा चुका है, अतः इस ठोस कारण के अभाव में कि क्यों अपीलार्थीगण उक्त दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सके, अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष ऐसी विफलता के किसी ठोस कारण के अभाव में अपीलार्थीगण का आवेदन स्वीकार



किए जाने योग्य नहीं है। गावे देई बनाम सुबासिनी देई एवं अन्य²¹ के मामले में, 'अन्यत्र उपस्थिति' का तर्क बहुत विलंब से लिया गया था और विचारण न्यायालय में इस तर्क की पुष्टि के लिए किसी भी साक्षी का परीक्षण नहीं किया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलीय न्यायालय द्वारा अभियुक्त को 'अन्यत्र उपस्थिति' के तर्क को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देना न्यायोचित नहीं था। ममतादेवी बनाम विजयकुमार अग्रवाल²² के मामले में, अभियुक्त ने चेक पर अपने हस्ताक्षरों पर विवाद किया था और यद्यपि विचारण न्यायालय के समक्ष उसके पास विशेषज्ञ की राय लेने का पर्याप्त अवसर था, लेकिन उसने साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया। अपीलीय स्तर पर विशेषज्ञ का अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के उसके आवेदन को खारिज कर दिया गया था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यद्यपि शक्ति व्यापक है, फिर भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 391 के तहत शक्ति का प्रयोग सामान्यतः ऐसी स्थिति में नहीं किया जाना चाहिए जहाँ किसी पक्षकार ने साक्ष्य प्रस्तुत करने के अवसर का लाभ न उठाया हो। इसके अतिरिक्त, आवेदन में ऐसा कोई विशिष्ट अभिवाक न होने के कारण कि जिस प्राधिकारी ने मंजूरी प्रदान की थी, उसे 1961 के अधिनियम की धारा 345 के तहत राज्य सरकार द्वारा धारा 328 के अंतर्गत शक्तियों का प्रत्यायोजन किए बिना अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा प्रशासक नियुक्त किया गया था, इस न्यायालय की

211998 CR.L.J 3071 (Orissa)

222008 CR.L.J 970 (Bombay)



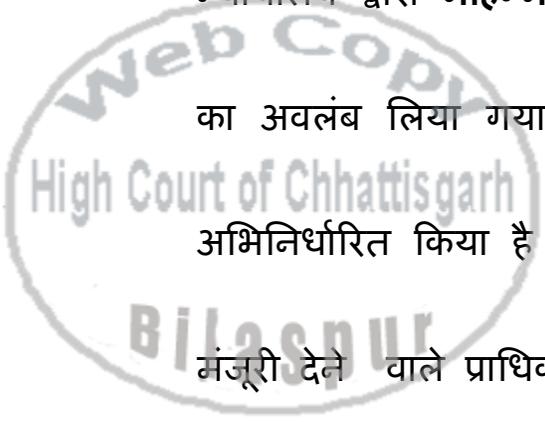
सुविचारित राय में, यह नहीं कहा जा सकता कि अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण करने हेतु प्रस्तुत आवेदन अस्वीकार करने से न्याय की विफलता हुई है। अतः, यह आवेदन खारिज किए जाने योग्य है। तदनुसार, मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी की सक्षमता पर उठाये गये आपत्ति को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से खारिज किया गया है और इसमें अपील के स्तर पर किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, विशेष रूप से तब जब अपीलार्थीगण ने ऐसा कोई बचाव प्रस्तुत नहीं किया कि शक्तियों का कोई प्रत्यायोजन नहीं हुआ था, और न ही उन्होंने विवेचना अधिकारी (अ.सा-9) सहित किसी भी साक्षी को ऐसा कोई सुझाव दिया जिससे यह कहा जा सके कि 1961 के अधिनियम की धारा 345 के तहत प्रत्यायोजन आदेश प्रस्तुत न करने के कारण अभियोजन के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सूर्या संकरनी करी (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा करना गलत है।

10. मंजूरी के आदेश की वैधता पर गंभीर आपत्ति इस तर्क पर आधारित है कि मंजूरी आदेश तात्त्विक रूप से दोषपूर्ण है क्योंकि अभियोजन ऐसा कोई साक्ष्य



प्रस्तुत करने में विफल रहा है कि सक्षम प्राधिकारी ने अभियोजन की मंजूरी देने का निर्णय लेने से पूर्व दांडिक मामले के सुसंगत अभिलेखों पर सम्यक एवं उचित रूप से अपने विवेक का प्रयोग किया था। यह तर्क दिया गया है कि संबंधित नोट-शीट और फाइल सहित ऐसी कोई सामग्री पेश नहीं की गई है जिससे यह पुष्टि हो सके कि अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री (साक्ष्य) पर सम्यक और उचित विचार करने के पश्चात मंजूरी प्रदान की गई थी। इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मोहम्मद इकबाल अहमद (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया है। उक्त निर्णय में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पर यह भार है कि वह यह सिद्ध करे कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा इस बात से संतुष्ट होने के बाद ही कि अपराध के अभियोजन हेतु मंजूरी आवश्यक है, वैध मंजूरी दी गई है। आगे यह भी निर्धारित किया गया है कि इसे दो तरीकों से किया जा सकता है: (1) मूल मंजूरी आदेश प्रस्तुत करके जिसमें स्वयं अपराध गठित करने वाले तथ्य और संतुष्टि के आधार निहित हों, या (2) अन्य साक्ष्य प्रस्तुत करके यह दिखाने के लिए कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष तथ्य रखे गए थे और उनके द्वारा संतुष्टि के बाद ही अभियोजन हेतु मंजूरी दिया गया था।





उस मामले में, यह तर्क दिया गया था कि मंजूरी उन तथ्यों को प्रकट नहीं करता है जिनसे अपराध गठित होता है इसलिए, यह दिखाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने किस साक्ष्य (सामग्री) पर अपने विवेक का प्रयोग किया और मंजूरी प्रदान किया। न्यायालय के समक्ष जो प्रस्तुत किया गया था वह स्थायी समिति का एक संकल्प था, जिसमें अपराध गठित करने वाले तथ्यों पर बिना किसी विचार के केवल मंजूरी प्रदान करने के तथ्य को दर्ज किया गया था। विचारण के दौरान अभियोजन कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत करके यह स्थापित करने में विफल रहा कि अपराध गठित करने वाले तथ्य मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे। संकल्प को सिद्ध करने के लिए दो साक्षियों का परीक्षण किया गया था। चूँकि संकल्प में अपराध गठित करने वाले किसी भी तथ्य का उल्लेख नहीं था, इसलिए अभियोजन हेतु मंजूरी को अवैध ठहराया गया था।

हालाँकि, वर्तमान मामले में, दिनांक 19.3.1990 को पारित मंजूरी आदेश (प्रदर्श पी-24) एक विस्तृत आदेश है, जो 1947 के अधिनियम की धारा 5 (1) (डी) और 5 (2) तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के तहत अपराध गठित करने वाले सुसंगत तथ्यों के बारे में बताता है। अतः, वर्तमान मामले जैसे प्रकरण में, जहाँ आदेश में स्वयं



अपराध गठित करने वाले विस्तृत तथ्य, जाँच एजेंसी द्वारा एकत्र किये गये सामग्री (साक्ष्य) और विवेक के प्रयोग को दर्शाने वाले कारण दर्ज हैं, वहाँ अभियोजन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अभियोजन हेतु मंजूरी प्रदान करने से पूर्व विवेक के सम्यक और उचित प्रयोग को स्थापित करने हेतु नोट-शीट के रूप में कोई अन्य अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत कर उसे प्रमाणित करे। वर्तमान मामला ऐसा है जहाँ अभियोजन, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मोहम्मद इकबाल अहमद (पूर्वोक्त) के मामले में बताए गए दो रीति में से एक रीति से अपना पक्ष सिद्ध करने में सफल रहा है।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अन्य दो निर्णय,

एम.एम. राजेंद्रन (पूर्वोक्त) और राजेश सिंह (पूर्वोक्त), स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।

11. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान अपने पक्ष में आकर्षित करने के लिये जोरदार ढंग से तर्क दिया है कि दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश विधि के तहत स्थिर रखे जाने योग्य नहीं है, क्योंकि अपीलार्थीगण पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के तहत अपराध का आरोप नहीं लगाया जा सकता था, और न ही उन्हें इसके लिए दोषी ठहराया जा सकता था; क्योंकि कथित अपराध के



समय 1947 का अधिनियम लागू और प्रवर्तन में था। अतः, 1988 के अधिनियम के तहत दोषसिद्धि ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20(1) के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया है।

इस तर्क का विवेचन करने के लिए,

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20(1) के तहत गारंटीकृत संरक्षण की प्रकृति का परीक्षण करना आवश्यक है।"

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 20 (1) इस प्रकार है:-

"(1) कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्धदोष नहीं ठहराया जायेगा जब तक उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय जो अपराध के रूप में आरोपित है किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक किसी शास्ति का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किये जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी"

12. उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधान विधायिका की कानून बनाने की शक्ति पर दो सीमाएं निर्धारित करके संरक्षण प्रदान करता है। यह निम्नलिखित को प्रतिबंधित



करता है:

- (i) कार्योत्तर दांडिक विधि बनाना, अर्थात् किसी कार्य को पहली बार अपराध घोषित करना और फिर उस विधि को भूतलक्षी प्रभाव देना।
- (ii) उस दंड से अधिक दंड अधिरोपित किया जाना, जो उस विधि के तहत दिया जा सकता था जो अपराध किए जाने के समय लागू था।

[कृपया देखें: जी.पी. नय्यर बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन)

ए.आई.आर 1979 एस.सी 602, राव शिव बहादुर सिंह और अन्य

बनाम विंध्य प्रदेश राज्य (ए.आई.आर 1953 एस.सी 394) और

केदारनाथ बाजोरिया, आत्मज रामजीदास बाजोरिया बनाम पश्चिम

बंगाल राज्य (ए.आई.आर 1953 एस.सी 404)]"

13. स्वीकृत रूप से, जिस समय कथित अपराध किया गया था और जब प्रथम

सूचना प्रतिवेदन दर्ज किया गया था, तब 1947 का अधिनियम प्रभावशील था।

इसके अतिरिक्त, भारतीय दंड संहिता की धारा 161 का प्रावधान भी लागू था।

भारतीय दंड संहिता की धारा 161 में निहित प्रावधान का 1988 के अधिनियम की



धारा 7 के प्रावधान के साथ तुलनात्मक अध्ययन और विश्लेषण, तथा 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(डी), 5(2) के प्रावधान का 1988 के अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के प्रावधान के साथ तुलना और विश्लेषण यह प्रकट करता है कि उपरोक्त संबंधित प्रावधानों के तहत अपराध का मूल तत्व एक समान है। यहाँ तक कि जिस समय रिश्त लेने का कथित कृत्य करना बताया

गया है, वह तत्कालीन प्रभावशील विधि के तहत एक अपराध था। वर्तमान मामला

ऐसा नहीं है जहाँ अपीलार्थी द्वारा किया गया कथित कृत्य 1988 के अधिनियम के

अधिनियमित होने तक अपराध नहीं था। अतः, 1988 के अधिनियम की धारा 7,

भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के समरूप है और धारा 13(1)(डी) सहपठित

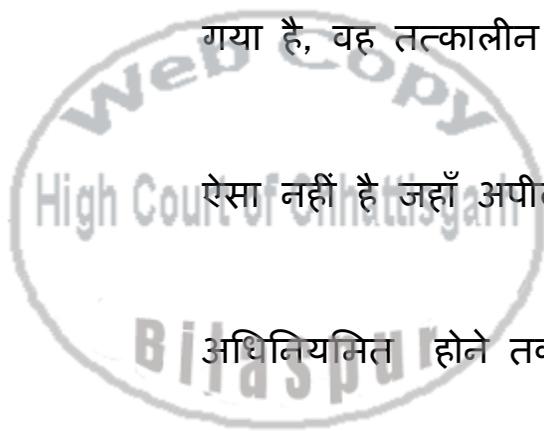
धारा 13(2), 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(डी) सहपठित धारा 5(2) के

समरूप है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलार्थी पर किये गये कार्य

के लिये कार्यांतर दांडिक विधि के तहत आरोप लगाया गया है और उसे

दोषसिद्ध किया गया है। वर्तमान मामले में, अपीलार्थीगण को 1988 के अधिनियम

की धारा 7 के तहत दोषी ठहराया गया है और उन्हें एक वर्ष के कठोर कारावास के





साथ 500/- रुपये के जुर्माने का दंडादेश दिया गया है, तथा जुर्माना के व्यतिक्रम पर 5 माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा। 1988 के अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के तहत अपराध करने के लिए, प्रत्येक अपीलार्थी को एक वर्ष के कठोर कारावास और 500/- रुपये के जुर्माने का दंडादेश दिया गया है, तथा जुर्माना के व्यतिक्रम पर 5 माह का कठोर कारावास भुगतना होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के तहत अपराध के लिए दी जाने वाली अधिकतम सजा तीन वर्ष है, जो अपीलार्थीगण को वास्तव में दी गई सजा की अवधि से अधिक है। इसी प्रकार, 1947 के अधिनियम की धारा 5(2) के तहत दी जाने वाली अधिकतम सजा सात वर्ष है, जो कि अपीलार्थीगण को अपराध के लिए दी गई वास्तविक सजा से बहुत अधिक है। इसलिए, वर्तमान मामला ऐसा भी नहीं है जहाँ यह कहा जा सके कि दिया गया दंड उस दंड से अधिक है जो अपराध किए जाने के समय लागू विधि, अर्थात् 1947 के अधिनियम, के तहत दिया जा सकता था। अतः, यह तर्क कि अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि भारतीय संविधान के



अनुच्छेद 20(1) के तहत गारंटीकृत संवैधानिक संरक्षण का उल्लंघन है, अमान्य होना चाहिए।

14. अन्य तर्क कि दोषसिद्धि इस आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है कि अपीलार्थीगण पर गलत तरीके से 1988 के अधिनियम के तहत अपराध का आरोप लगाया गया और उन्हें दोषसिद्ध किया गया, का परीक्षण किया जाना आवश्यक है।

जगन एम. शेषाद्री (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेते हुए, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आरोप 1988 के अधिनियम के तहत विरचित नहीं किये गए थे, अपितु वे केवल 1947 के अधिनियम के तहत ही विरचित किये गए थे थे। जगन एम. शेषाद्री (पूर्वोक्त)

के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय निश्चित रूप से यह अभिनिर्धारित करता है कि जहाँ कथित कृत्य किया गया है तथा प्रथम सूचना प्रतिवेदन तब दर्ज की गई है जब 1947 का अधिनियम प्रवर्तन में था, तब आरोप 1947 के अधिनियम के तहत विरचित किया जाना आवश्यक हैं न कि 1988 के अधिनियम के तहत। हालाँकि, विचारणीय प्रश्न जो यहाँ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या केवल उसी आधार पर विचारण दूषित हो जाता है और दोषसिद्धि अपास्त



किए जाने योग्य है। यह मुद्दा एम.डब्ल्यू. मोहिउद्दीन बनाम महाराष्ट्र राज्य²³ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ हेतु आया था। वह एक ऐसा मामला था जहाँ मामले का विचारण प्रारंभ में भारतीय दंड संहिता की धारा 161 सहपठित 1947 के अधिनियम की धारा 5(2) के तहत प्रारंभ हुआ था, परन्तु विचारण न्यायालय ने अंततः अभियुक्त को 1988 के नए अधिनियम के प्रावधान के तहत दोषसिद्ध किया और यह तर्क दिया गया कि इस आधार पर विचारण और दोषसिद्धि दूषित हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उक्त तर्क को इस प्रकार खारिज कर दिया गया था

“9. हम प्रासंगिक रूप से यह उल्लेख कर सकते हैं कि विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देने का भी प्रयास किया कि अभियुक्त का विचारण प्रारंभ में भारतीय दंड संहिता की धारा 161 सहपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) के तहत शुरू हुआ था, लेकिन विचारण न्यायालय ने अंततः अभियुक्त को 1988 के नए अधिनियम के प्रावधानों के तहत दोषसिद्ध किया। इसलिए, विचारण दूषित है। हमें इस तर्क में कोई सार नजर नहीं आता। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रारंभ में दिनांक 9-12-1983 को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(डी) सहपठित धारा 5(2) के तहत आरोप विरचित किया गया था, लेकिन जब 1990 में



वास्तव में विचारण शुरू हुआ, तब तत्कालीन पीठासीन न्यायाधीश ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(डी)(i), (ii) सहपठित धारा 13(2) और धारा 7 के तहत आरोप विरचित किया और विचारण की कार्यवाही आगे बढ़ा। हमें ऐसा कोई भी आपत्ति नहीं मिला जो विचारण न्यायालय के समक्ष उठाई गई हो और न ही ऐसा कोई तर्क अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। अन्यथा भी, हम देखते हैं कि अभियुक्त को इससे कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पहुँचा है, क्योंकि इन अपराधों के संबंध में दोनों अधिनियमों के सुसंगत प्रावधानों के तहत आरोपों का मूल तत्व सार रूप में एक ही है तथा किसी भी स्थिति में, अपीलार्थी पहली बार इस न्यायालय में ऐसा तर्क नहीं उठा सकते, जब वास्तव में उसे इससे कोई क्षति या प्रतिकूल प्रभाव नहीं पहुँचा हो।"

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय का उपर्युक्त निर्णय स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने किसी भी प्रकार के प्रतिकूल प्रभाव के अभाव में दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया था; न्यायालय का यह मानना था कि कथित अपराध के संबंध में दोनों अधिनियमों के सुसंगत प्रावधानों के तहत



आरोपों का मूल तत्व सार रूप में एक ही था। वर्तमान मामले में भी स्थिति अलग नहीं है क्योंकि, केवल यह तर्क देने के अलावा कि आरोप गलत तरीके से विरचित किए गए थे और दोषसिद्धि 1988 के नए अधिनियम के तहत दी गई थी, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता अपीलार्थीगण को हुए किसी भी प्रतिकूल प्रभाव को स्थापित करने में पूर्णतः विफल रहे हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एम.डब्ल्यू. मोहिउद्दीन (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के आलोक में, जब तक कि प्रतिकूल प्रभाव कारित होना सिद्ध न हो जाए, दोषसिद्धि को केवल इस आधार पर सफलतापूर्वक चुनौती नहीं दी जा सकती कि भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के तहत आरोप विरचित करने के स्थान पर, 1988 के अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के तहत आरोप विरचित किए गए थे। सारभूत रूप से, दोषसिद्धि को केवल तकनीकी आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता है, अपितु केवल तभी अपास्त किया जा सकता है जब आरोप विरचित करने में हुई ऐसी त्रुटि के परिणामस्वरूप अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो। दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश के पठन से यह कहीं भी परिलक्षित नहीं होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने 1988 के अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(2) के तहत निर्धारित न्यूनतम सजा से कम सजा देने के लिए कुछ



शमनकारी परिस्थितियों पर विचार किया था, बल्कि न्यूनतम दंड के कड़े प्रावधान को देखते हुए, आरोपित प्रत्येक अपराध के लिए एक वर्ष का सश्रम कारावास प्रदान किया गया था। वास्तव में, विद्वान विचारण न्यायालय ने वह दंड दिया है जो आरोपित अपराध सिद्ध होने पर दी जाने वाली न्यूनतम आवश्यक दंड से कहीं अधिक है। ऐसा कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह पता चले कि 1988 के अधिनियम के तहत आरोप विरचित करने और दोषसिद्धि के कारण अपीलार्थीगण के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। अतः, इस आधार पर भी, दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

16. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा अरुण कुमार पांडे (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर प्रबल रूप से अवलंब लेते हुये यह तर्क दिया है कि 1988 के अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(2) दोनों के तहत विहित न्यूनतम दंड के कठोर प्रावधानों को देखते हुए, अपीलार्थीगण पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, क्योंकि उनमें से प्रत्येक को अधिरोपित प्रत्येक अपराध के लिए एक वर्ष के दंड से दोषसिद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया गया कि एम.डब्ल्यू. मोहिउद्दीन (पूर्वोक्त) का मामला वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा और यह वर्तमान से अलग मामला है , क्योंकि वह एक ऐसा मामला था



जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने तथ्यों के आधार पर यह पाया था कि कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा था, जबकि वर्तमान मामले में, अपीलार्थीगण को निश्चित रूप से प्रतिकूल प्रभाव पहुँचा है। मैं इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ, जिसका प्रथम कारण यह है कि **अरुण कुमार पांडे** (पूर्वोक्त) के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में 'प्रतिकूल प्रभाव के सिद्धांत' को लागू किया गया था, लेकिन तथ्यों के आधार पर उस मामले में भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पाया गया था। इस सिद्धांत पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि जब तक प्रतिकूल प्रभाव सिद्ध न हो जाए, अभियुक्त मात्र किसी तकनीकी आधार के सिद्ध होने पर किसी लाभ का हकदार नहीं होगा। यह निष्कर्ष ऊपर संदर्भित **एम.डब्ल्यू. मोहिउद्दीन** (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की टिप्पणी से निकाला जा सकता है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त को कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पहुँचा क्योंकि आरोपित अपराधों के संबंध में दोनों अधिनियमों के सुसंगत प्रावधानों के तहत आरोपों का सार मूल रूप से समान था। उच्चतम न्यायालय ने 'प्रतिकूल प्रभाव के सिद्धांत' को स्पष्ट रूप से लागू करते हुए इस तर्क को खारिज कर दिया। अतः, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर यह परीक्षण और विश्लेषण किया जाना आवश्यक है कि क्या अभियुक्त को कोई



प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। तथापि, ऊपर विस्तृत रूप से बताए गए तथ्यों के आधार पर, इस न्यायालय ने यह माना है कि 1988 के अधिनियम के तहत आरोप विरचित किए जाने के कारण अपीलार्थीगण को कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पहुँचा है। अतः, अरुण कुमार पांडे (पूर्वोक्त) के मामले में पारित आदेश वर्तमान मामले से स्पष्ट रूप से भिन्न है।

17. अपीलार्थीगण द्वारा उठाए गए उपरोक्त विधिक प्रश्नों का परीक्षण करने के पश्चात, अब मैं मांग, स्वीकृति तथा बरामदगी के प्रमाण से संबंधित अन्य तर्कों पर विचार करूँगा। उन तर्कों पर विचार करने से पहले, मांग के संबंध में साक्ष्यों का परीक्षण करते समय अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण पर ध्यान देना लाभप्रद होगा।

18. रिश्त देने वाले व्यक्ति की स्थिति और एक शासकीय सेवक को फँसाने वाले उसके साक्ष्य का आकलन करते समय आवश्यक सावधानी की जांच माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बाद में एम.ओ. शमसुद्दीन (पूर्वोक्त) के मामले में दिये गये निर्णय में किया गया था, जिसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:-



"12. अब स्वयं को रिश्त से सम्बन्धी मामलों तक सीमित रखते हुए, यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि किसी लोक अधिकारी को रिश्त देने वाला व्यक्ति, अवैध परितोषण स्वीकार करने के अपराध में एक 'सह-अपराधी' की प्रकृति का होता है; लेकिन ऐसे मामले में आवश्यक 'पुष्टि' की प्रकृति को उन कठोर परीक्षणों के अधीन नहीं किया जाना चाहिए जो सामान्यतः एक 'संस्वीकृति करने वाले साक्षी के मामले में लागू होता है। यद्यपि रिश्त देने वालों को सामान्यतः सह-अपराधियों की प्रकृति का माना जाता है, लेकिन वे भी विभिन्न प्रकार और वर्गों के होते हैं। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत मामलों में, शिकायतकर्तावह व्यक्ति होता है जो तकनीकी और विधिक अर्थ में रिश्त देता है क्योंकि प्रत्येक 'ट्रैप प्रकरण में, जहाँ भी शिकायत दर्ज की जाती है, वहाँ एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे आरोपी को पैसा देना होता है। वास्तव में, यह वही रिश्त का पैसा होता है जिसकी मांग की गई होती है और उसे दिये बिना 'ट्रैप' सफल नहीं हो सकता। जब किसी लोक सेवक द्वारा ऐसे व्यक्ति से रिश्त की मांग की जाती है जो रिश्त देने का इच्छुक नहीं है, और यदि वह जनहित में अधिकारियों के पास जाकर शिकायत दर्ज कराता है, तो





'ट्रैप' को सफल बनाने के लिए उसे वह पैसा देना पड़ता है। एक अन्य प्रकार का रिश्ता देने वाला वह हो सकता है जो अपना काम निकलवाने के लिए हमेशा पैसा देने को तैयार रहता है और काम हो जाने के बाद वह शिकायत दर्ज करा सकता है। यहाँ वह किए गए अपराध के संबंध में अपराध का भागीदार है और इस प्रकार एक सह-अपराधी है। इस प्रकार, सह-अपराधियों के भी विभिन्न श्रेणियाँ और वर्ग होते हैं और इसलिए उन मामलों के बीच स्पष्ट अंतर किया जा सकता है जहाँ एक व्यक्ति अपने निजी उद्देश्य की पूर्ति के लिए रिश्ता देता है, और जहाँ किसी व्यक्ति को हानि या नुकसान की धमकी के तहत, अर्थात् प्रपीड़न के तहत रिश्ता देने के लिए मजबूर किया जाता है। वह व्यक्ति जो इस श्रेणी में आता है और जो 'ट्रैप' कार्यवाही हेतु एक पक्षकार बनता है, वह एक अलग पायदान पर होता है क्योंकि वह केवल उस धमकी या प्रपीड़न का शिकार होता है, जिसके अधीन उसे किया गया था। जहाँ ऐसे गवाह रिश्ता देने वाला होने के कारण प्रथम दृष्टया 'सह-अपराधी' की श्रेणी में आते हैं, वहाँ न्यायालय को पहले 'संलिप्तता की मात्रा पर विचार करना होता है और फिर विवेक के नियम के रूप में, यदि आवश्यक हो, तो 'संपुष्टि की तलाश करनी होती





है। किसी मामले में आवश्यक संपुष्टि की सीमा और प्रकृति, तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर भिन्न हो सकती है।“

अतः, उच्चतम न्यायालय द्वारा

प्रतिपादित सिद्धांतों से जो तथ्य उभरकर सामने आता है, वह यह है कि शिकायतकर्ता के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और न्यायालय को संलिप्तता की मात्रा पर विचार करना चाहिए और फिर विवेक के नियम के रूप में, यदि आवश्यक हो, तो संपुष्टि की तलाश करनी चाहिए। किसी मामले में आवश्यक संपुष्टि का सीमा और प्रकृति, तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर भिन्न हो सकती है।

इसलिए, अभियोजन पक्ष और बचाव

पक्ष द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य की सूक्ष्मता से जांच किया जाना आवश्यक है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या अभियोजन पक्ष मांग, स्वीकृति और बरामदगी को युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाणित करने में सफल रहा है।

19. परिवादी-लोकनाथ साहू (अ.सा-7) द्वारा दिनांक 5.3.1986 को लिखित में शिकायत (प्रदर्श पी-1) प्रस्तुत किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख



किया गया है कि प्रमाण पत्र जारी करने हेतु दिनांक 3.3.1986 को एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था और जब शिकायतकर्ता प्रमाण पत्र जारी कराने के संबंध में दो अपीलार्थीगण हरिश्चंद्र और बलराम से मिला, तब उन दोनों ने उससे 200/- रुपये की मांग करते हुए कहा कि वह 200/- रुपये लेकर आए, तब उसे प्रमाण पत्र मिलेगा, अन्यथा वह यँ ही भटकता रहेगा। इसमें यह विशिष्ट उल्लेख भी है कि हरिश्चंद्र ने कहा कि वह 100/- रुपये लेगा और बलराम भी 100/- रुपये लेगा, जिस पर बलराम ने भी सहमति जताया और कहा कि जैसे ही पैसा दिया जायेगा, काम हो जाएगा। शिकायत में हेतुक का उल्लेख स्पष्ट रूप से है। यह तथ्य कि शिकायतकर्ता ने दिनांक 3.3.1986 को आवेदन प्रस्तुत किया था, मुख्य नगर पालिका अधिकारी, नगर पंचायत महासमुंद के कार्यालय में शिकायतकर्ता द्वारा दिए गए दिनांक 3.3.1986 के पत्र की जब्ती से भी सिद्ध होता है। उक्त दस्तावेज (प्रदर्श पी-8) को जब्ती पत्रक प्रदर्श पी-10 के माध्यम से जब्त किया गया था। एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1), जो कि शिकायतकर्ता और पुलिस गवाह के अलावा अभियोजन पक्ष के एक स्वतंत्र साक्षी है, ने जब्ती के गवाहों में से एक के रूप में उस पत्र की जब्ती को सिद्ध किया है। उस पत्र की जब्ती को एक अन्य स्वतंत्र साक्षी एच.बी. सिंह (अ.सा- 8) द्वारा भी सिद्ध किया गया है। इस प्रकार, विवेचना अधिकारी- एस.के. वर्मा (अ.सा- 9), डी.एस.पी., लोकायुक्त कार्यालय, बिलासपुर द्वारा निगम के



कार्यालय से पत्र की जब्ती पूर्ण रूप से सिद्ध है। अतः यह सिद्ध होता है कि शिकायतकर्ता ने दिनांक 3.3.1986 को आवेदन प्रस्तुत किया था। जिस उद्देश्य के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया था, यह वही उद्देश्य था जिसके लिए शिकायत में मांग किए जाने का उल्लेख किया गया है।

20. शिकायतकर्ता लोकनाथ साहू (अ.सा-7) ने अपने साक्ष्य के कंडिका-4 में प्रभावशाली ढंग से यह कथन किया है कि उसने आवेदन (प्रदर्श पी-8) प्रस्तुत किया था और उसने अपने हस्ताक्षर प्रमाणित किया हैं। उसने बहुत ही स्पष्ट रूप से यह बताया है कि वह प्रमाण-पत्र जारी कराने के संबंध में अपीलार्थीगण-बलराम और हरीश चंद्र से मिला था, जिस पर बलराम ने कहा कि इसके लिए उसे 200/- रुपये देने होंगे, अन्यथा वह कार्यालय के चक्कर काटता रहेगा। हरीश चंद्र ने उससे कहा कि उसे 200/- रुपये देने होंगे, जिसमें से हरीश चंद्र 100/- रुपये लेगा। उसने (शिकायतकर्ता ने) रिश्त के बारे में किये गए बातचीत और फिर 200/- रुपये पर हुए सौदेबाजी के संबंध में भी साक्ष्य दिए हैं। उसे अगले दिन आने के लिए कहा गया था। अपीलार्थी हरीश चंद्र से एक प्रमाण-पत्र का प्रारूप (ड्राफ्ट) भी प्रदर्श पी-10 के माध्यम से जब्त किया गया था, जो शिकायतकर्ता के पिता के नाम पर जारी एक प्रमाण-पत्र है जिसमें यह उल्लेख है कि शिकायतकर्ता उक्त



मकान में रह रहा है। उक्त प्रमाण-पत्र की जब्ती को एस.के. वर्मा (अ.सा-9) द्वारा प्रमाणित किया गया है, जो जब्ती के दो स्वतंत्र गवाहों- एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा-8) के बयानों से भी समर्थित है। यह तथ्य भी सुसंगत है कि प्रदर्श पी-8 के पीछे एक टीप अंकित था, जिस पर प्रमाण-पत्र जारी करने के संबंध में दिनांक 5.3.1986 को अपीलार्थीगण में से एक के हस्ताक्षर थे। शिकायतकर्ता ने आगे यह कथन किया है कि वह दिनांक 5.3.1986 को कार्यालय पहुँचा था। अभिलेख पर ऐसे ठोस साक्ष्य मौजूद हैं जो यह दर्शित करते हैं कि दिनांक 5.3.1986 को एक ट्रैप कार्यवाही किया गया था। रिश्त की मांग की कहानी की सम्पुष्टि स्वतंत्र साक्षी एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) के साक्ष्य से भी होती है, जिसने अपने बयान के कंडिका -8 में यह कथन किया है कि वह शिकायतकर्ता के साथ गया था और कार्यालय में उस समय उपस्थित था जब शिकायतकर्ता लोकनाथ ने दोनों अपीलार्थीगण से मुलाकात किया और कहा कि वह पैसे लेकर आया है। इसके पश्चात उसने 100/- रुपये (50-50 रुपये के दो करेंसी नोट) बलराम को और अन्य 100/- रुपये (50-50 रुपये के दो करेंसी नोट) हरीश चंद्र को दिए, जिसे उन्होंने अपनी फुल-पेंट की जेब में रख लिया। अपने प्रतिपरीक्षण के कंडिका-27 में उसने कथन किया कि शिकायतकर्ता हरीश चंद्र से मिला और कहा कि उसके पास पैसे हैं, प्रमाण-पत्र तैयार किया जाए। अपने



प्रतिपरीक्षण के कंडिका-28 में उसने आगे स्पष्ट किया कि हरीश ने शिकायतकर्तासे पूछा था कि क्या वह पैसे लाया है। अतः, यदि उपरोक्त साक्ष्यों को एक साथ जोड़ा जाए, ऐसी स्थिति में मांग की कहानी न केवल शिकायतकर्तालोकनाथ के स्वतंत्र और सुसंगत साक्ष्यों से प्रमाणित होता है, बल्कि स्वतंत्र गवाह एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया और अपनी पूरी क्षमता व तर्कशीलता के साथ इस न्यायालय को यह समझाने का प्रयास किया कि शिकायतकर्ता लोकनाथ का अपीलार्थीगण को झूठा फंसाने का एक निश्चित हेतुक था, क्योंकि निगम के समक्ष प्रस्तुत उसके पूर्व आवेदन पर अपीलार्थीगण द्वारा एक विशिष्ट आपत्ति की टीप अंकित किया गया था कि शिकायतकर्ता का कर बकाया है, जिसके कारण प्रमाण-पत्र जारी नहीं किया जा सका। इसलिए, किसी भी प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य से स्वतंत्र सम्पुष्टि के अभाव में शिकायतकर्ता अविश्वास किये जाने योग्य है। इस तर्क के समर्थन में, बचाव पक्ष द्वारा शिकायतकर्ता द्वारा समय-समय पर नगरपालिका के मुख्य चिकित्सा अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत विभिन्न आवेदनों पर भरोसा जताया गया है, जिन्हें अभिलेख पर प्रदर्श डी-1 से डी-6 के रूप में रखा गया है। ये वे आवेदन हैं जो शिकायतकर्ताद्वारा दिनांक 3.2.1986 से दिनांक 22.2.1986 की अवधि के बीच नगरपालिका में प्रस्तुत किए गए थे। कथन किया आवेदन यह दर्शित करते



हैं कि शिकायतकर्ता द्वारा प्रमाणित प्रति आदि जारी कराने हेतु कई आवेदन दिये गए थे। प्रदर्श डी-1 यह दर्शित करता है कि दिनांक 26.2.1986 को एक टीप अंकित किया गया है कि 1011.41/- रुपये का संपत्ति कर वसूला जाना शेष है। प्रदर्श डी-2 में दिनांक 25.2.1986 के टीप से भी यह पता चलता है कि कर की बकाया राशि प्राप्त होने के बाद 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' जारी किया जाना प्रस्तावित था। इसी तरह के टीप दिनांक 21.2.1982 के आवेदन (प्रदर्श डी-3) पर अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने के संबंध में हैं। प्रदर्श डी-4 और डी-5 में भी कई टीप अंकित हैं। अतः इन दस्तावेजों से यह कहा जा सकता है कि शिकायतकर्ता लोकनाथ ने एन.ओ.सी आदि जारी कराने के लिए कई आवेदन देकर नगरपालिका कार्यालय से संपर्क किया था और इस आशय के कई टीप अंकित किए गए थे कि शिकायतकर्ता पर कर बकाया है। इस परिस्थिति में निश्चित रूप से रिश्त की मांग की कहानी का सूक्ष्मता से परीक्षण किया जाना आवश्यक है, किंतु साथ ही, इसे अपने आप में मांग की कहानी पर अविश्वास करने वाली परिस्थिति नहीं कहा जा सकता। मांग से सम्बन्धी साक्ष्यों की जांच और इस न्यायालय द्वारा ऊपर वर्णित मांग की पुष्टि, किसी भी तात्त्विक विरोधाभास या महत्वपूर्ण विवरणों के लोप के अभाव में, मांग को संदेह से परे प्रमाणित करती है। स्वतंत्र अभियोजन साक्षी एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) ने भी इसकी पुष्टि की है क्योंकि उसने अपीलार्थी



हरीश को शिकायतकर्ता से यह कहते हुए सुना था कि "क्या वह पैसे लाया है" और उसके बाद पैसे निकाले गए और प्रत्येक अपीलार्थी को दिए गए, जो एक ही कमरे में दो मेजों पर बैठे थे।

21. यह भी तर्क दिया गया है कि दो स्वतंत्र साक्षी, एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा.-8), 'स्टॉक साक्षी' (अभ्यस्त साक्षी) हैं क्योंकि उन्हें कई मामलों में ट्रेप कार्यवाही के साक्षी के रूप में बार-बार उपयोग किया गया है।

इसलिए, उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह न्यायालय इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ है कि सभी मामलों में एक सामान्य सिद्धांत के रूप में,

स्वतंत्र पंच साक्षियों के कथन को केवल इस आधार पर खारिज किया जाना चाहिए

कि वे अन्य ट्रेप मामलों में भी साक्षी रहे हैं। यदि स्वतंत्र पंच साक्षियों का साक्ष्य

सुसंगत, विश्वसनीय है और उनके प्रतिपरीक्षण से ऐसा कुछ भी निकलकर नहीं

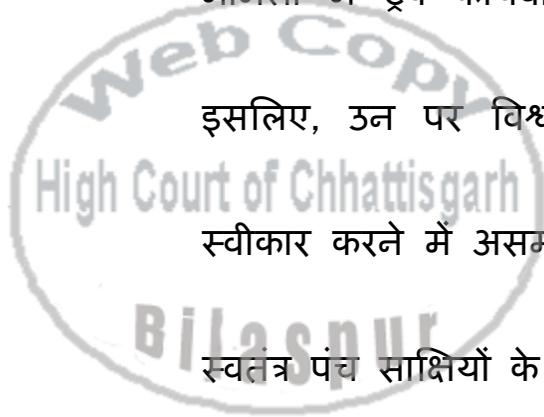
आया है जिससे यह संकेत मिले कि वे न्यायालय के समक्ष झूठ बोल रहे हैं, तो

मात्र इस तथ्य के आधार पर कि वे कुछ और मामलों में पंच साक्षी के रूप में

उपस्थित हुए थे, उनकी गवाही पर भरोसा करने में कोई बाधा नहीं है। मदन

गोपाल (अ. सा-5), पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस स्थापना (लोकायुक्त) ने अपने

प्रतिपरीक्षण के कंडिका -4 में कथन किया है कि विशेष पुलिस स्थापना साक्षी





बनने के उद्देश्य से सीधे किसी विशेष राजपत्रित अधिकारी की मांग नहीं करती है; शिकायत प्राप्त होने पर, किसी राजपत्रित अधिकारी को साक्षी के रूप में भेजने के लिए कलेक्टर को अनुरोध भेजा जाता है और कलेक्टर अधिकारी को नामित करते हैं और भेजते हैं। ऐसा कोई साक्ष्य (सामग्री) उपलब्ध नहीं है जिससे यह दर्शित हो कि इन दो स्वतंत्र पंच साक्षियों, एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा.-8) का वर्तमान ट्रेप मामले में साक्षी बनने में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ था।

वर्तमान मामले में ट्रेप की कार्यवाही के दौरान, उन्हें सामान्य क्रम में नामित किया

गया था। अतः, केवल इसलिए कि पूर्व के कुछ मामलों में उन्हें ट्रेप की कार्यवाही में पंच साक्षी के रूप में उपयोग किया गया था, उनके साक्ष्य को त्यक्त नहीं किया

जा सकता। रिश्त की मांग की कहानी पर इस तर्क के आधार पर भी संदेह किया

गया है कि अपीलार्थी प्रमाण पत्र जारी करने के लिए सक्षम नहीं थे। अभिलेख पर

शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत निर्विवाद साक्ष्य मौजूद है कि आवेदन जमा करने के

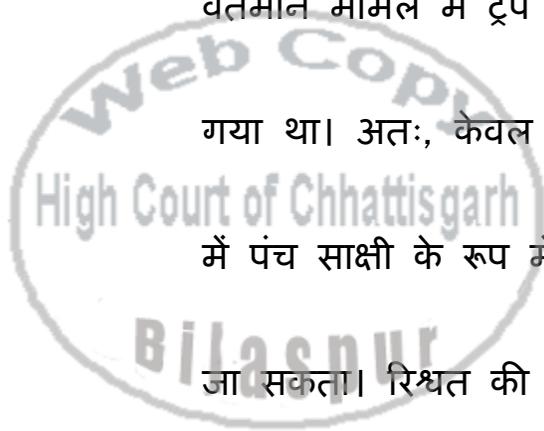
बाद, वह दोनों अपीलार्थीगण से मिला और उन्होंने उससे कहा कि पैसा मिलने के

बाद ही प्रमाण पत्र तैयार किया जाएगा। प्रासंगिक समय पर अपीलार्थी बलराम

संपत्ति कर अधिकारी के रूप में कार्यरत था, जबकि हरिश चंद्र वसूली अधिकारी के

रूप में कार्यरत था। बी.डी. धनंजय (अ.सा-6) ने अपने बयान के कंडिका-8 में

स्पष्ट रूप से कहा है कि आवेदन (प्रदर्श पी-8) और प्रमाण पत्र का मसौदा हरिश





चंद्र से प्रदर्श पी-9 के माध्यम से जब्त किया गया था। हरिश से प्रदर्श पी-9 की जब्ती को स्वतंत्र पंच साक्षियों एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा-8) द्वारा प्रमाणित किया गया है। विवेचना अधिकारी एस.के. वर्मा (अ.सा-9) ने अपने प्रतिपरीक्षण के कंडिका-20 में प्रमाण पत्र जारी करने के संबंध में बयान दिया है। उन्होंने कंडिका-21 में यह भी बताया है कि उन्होंने मुख्य नगरपालिका अधिकारी से प्रमाण पत्र जारी करने की प्रक्रिया के संबंध में जानकारी (प्रदर्श डी-7) प्राप्त की थी और उन्हें पता चला कि प्रमाण पत्र का प्रारूप अपीलार्थी द्वारा तैयार किया जाता है और यह भी सत्यापित किया जाता है कि कर का भुगतान किया गया है या नहीं। प्रदर्श डी-7 दिनांक 5.3.1986 मुख्य नगरपालिका अधिकारी द्वारा उप पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस स्थापना, लोकायुक्त रायपुर को जारी किया गया एक ज्ञापन है, जिसमें कहा गया है कि प्रमाण पत्र जारी करने के संबंध में कोई विशिष्ट नियम नहीं हैं और आवेदन संबंधित विभाग के माध्यम से भेजा जाता है तथा सम्बन्धित प्रतिवेदन प्राप्त होने पर, मुख्य नगरपालिका अधिकारी द्वारा प्रमाण पत्र जारी किया जाता है। वास्तव में, अपीलार्थियों का बचाव यह है कि उनके द्वारा प्राप्त 200/- रुपये कर की बकाया राशि के आंशिक भुगतान के रूप में लिए गए थे। अतः, अभिलेख पर यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं कि अपीलार्थी संपत्ति कर अधिकारी और कर वसूली अधिकारी के रूप में अपनी हैसियत से प्रमाण



पत्र जारी करने की प्रक्रिया में शामिल थे। यह शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत विभिन्न आवेदनों पर अपीलार्थी-बलराम द्वारा की गई विभिन्न टिप्पणियों से स्पष्ट है, जिन्हें अभिलेख पर अनुलग्नक डी-1 से डी-6 के रूप में संलग्न किया गया है। इसलिए, यह कहना कि अपीलार्थीगण का प्रमाण पत्र जारी करने से कोई सरोकार नहीं था, इसलिए यह असंभव है कि वे प्रमाण पत्र जारी करवाने के लिए किसी पैसे की मांग करेंगे, स्वीकार नहीं किया जा सकता। अपीलार्थी हरिश चंद्र से आवेदन (प्रदर्श पी-8) और प्रमाण पत्र के प्रारूप (प्रदर्श पी-9) की जल्दी ही प्रमाण पत्र जारी करने के

मामले में अपीलार्थीगण द्वारा निभाई जाने वाली आवश्यक भूमिका को स्पष्ट रूप से स्थापित करती है।

22. प्रत्येक अपीलार्थी से रिश्त की राशि स्वीकार किए जाने और साथ ही उसकी बरामदगी के अत्यधिक साक्ष्य मौजूद हैं। प्री-ट्रैप पंचनामा की कार्यवाही को स्वतंत्र पंच साक्षियों, एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा-8) द्वारा समर्थित ठोस और विश्वसनीय साक्ष्यों से सिद्ध किया गया है। एम.आर.भारद्वाज (अ.सा-1) ने शिकायतकर्तालोकनाथ साहू (अ.सा.-7) के इस कथन का स्पष्ट रूप से समर्थन किया है कि दिनांक 5.3.1986 को शिकायतकर्ताअपीलार्थियों के कार्यालय गया था तथा रिश्त की राशि दिया था , राशि स्वीकार किया गया था



और फुल-पेंट की जेब में रखा गया था। शिकायतकर्ता लोकनाथ (अ.सा-7) ने अपने अभिसाक्ष्य के कंडिका-7 में कहा है कि शिकायतकर्ता प्रत्येक अपीलार्थी से मिला था तथा बलराम ने पूछा था कि क्या वह पैसे लाया है और पैसे की मांग किया था, तब उसने पैसे दिया था जिसे उसने (बलराम) अपनी फुल पेंट की जेब में रख लिया। इसके पश्चात, उसने आवेदन (प्रदर्श पी-8) निकाला और उसके पीछे अपनी टीप दर्ज किया और फिर हरीश चंद्र को दे दिया। उसके बाद, हरीश चंद्र ने पैसे की मांग किया, उसे भी पैसे दिया गया और उसके द्वारा स्वीकार किया गया और उसने भी पैसे फुल पेंट की जेब में रख लिया। अपने प्रतिपरीक्षण के कंडिका-16 में उसने कहा कि उसने बलराम को और हरीश चंद्र को भी पैसे दिए थे।

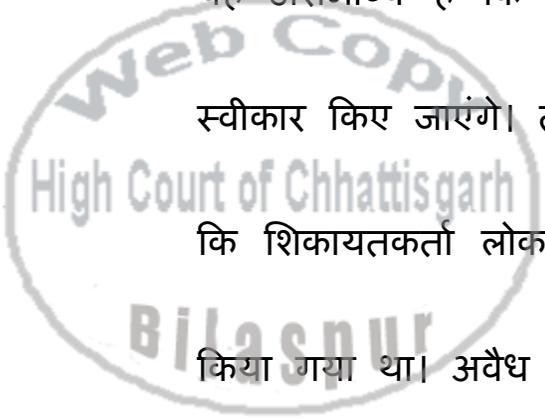
23. इसके अतिरिक्त, एम.आर. भारद्वाज (अ.सा-1), जो एक स्वतंत्र साक्षी हैं, ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह परिवादी-लोकनाथ के साथ कार्यालय गया था और उसने प्रत्येक अपीलार्थी को पैसे दिये जाने और उनके द्वारा उसे स्वीकार करना देखा था, और यह कि उन दोनों ने पैसे को अपनी फुल पेंट की जेब में रख लिया था। उन्होंने यह भी कथन किया है कि हरीश ने शिकायतकर्ता से पूछा था कि क्या वह पैसे लाया है। अतः, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य जिसमें स्वीकृति की सम्पुष्टि शामिल है, रिश्त की स्वीकृति को सिद्ध करते हैं। प्रत्येक अपीलार्थी से रिश्त की



राशि की बरामदगी के संबंध में साक्ष्यों की प्रचुरता और दो स्वतंत्र अभियोजन साक्षियों एम.आर. भारद्वाज (अ.सा.-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा-8) द्वारा सिद्ध की गई इसकी जब्ती, प्रत्येक अपीलार्थी से रिश्त की राशि की बरामदगी को प्रमाणित करती है। स्वतंत्र पंच साक्षियों और अभियोजन के अन्य साक्षियों कृष्णपाल सिंह (अ.सा-4), बी.डी. धनंजय (अ.सा-6) और एस.के. वर्मा (अ.सा-9) उप पुलिस अधीक्षक, विवेचना अधिकारी के प्रतिपरीक्षण से ऐसा कुछ भी सामने नहीं आ सका, जिससे प्रत्येक अपीलार्थी से रिश्त की राशि की बरामदगी के संबंध में अभियोजन पक्ष के वृत्तांत पर संदेह किया जा सके। दो स्वतंत्र पंच साक्षियों के साक्ष्य और एफ.एस.एल. के इस आशय के साक्ष्य कि अपीलार्थीगण के हाथों के धोवन वाली बोतलों में फिनाॅफथलीन के अंश पाए गए थे, अपीलार्थीगण के विरुद्ध एक प्रबल अभियोगात्मक साक्ष्य है कि उन दोनों ने करेंसी नोटों को छुआ था। दो स्वतंत्र पंच साक्षियों- एम.आर. भारद्वाज (अ.सा.-1) और एच.बी. सिंह (अ.सा-8) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पहले प्रत्येक अपीलार्थी के हाथ धुलवाए गए और उसके बाद उनके जेबों से नोट बरामद किए गए। हाथ धोने, नमूनों के संग्रह और नमूनों को एफ.एस.एल. भेजने के संबंध में साक्ष्य कोई संदेह उत्पन्न नहीं करते हैं और इस संबंध में साक्ष्य विश्वसनीय और स्वीकार किए जाने योग्य हैं।



24. एक कमजोर बचाव इस आशय का लिया गया है कि 200/- रुपये कर के बकाया के आंशिक भुगतान की वसूली के तौर पर स्वीकार किया गया था। इस बचाव की असंभाव्यता प्रथम दृष्टया बचाव पक्ष के स्वयं के मामले से और इस तथ्य से स्थापित होती है कि स्वयं बचाव पक्ष के अनुसार ही, शिकायतकर्तापर कर बकाया था और उसे बकाया कर के रूप में 1000/- रुपये से अधिक का भुगतान करना था। द्वितीयतः, यदि बकाया कर 1000/- रुपये से अधिक था, तो यह असंभाव्य है कि बकाया कर के भुगतान के रूप में केवल 200/- रुपये स्वीकार किए जाएंगे। तृतीय यह की, ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि शिकायतकर्ता लोकनाथ द्वारा कर जमा करने के संबंध में कोई रसीद जारी किया गया था। अवैध परितोषण के बजाय किसी अन्य उद्देश्य के लिए धन प्राप्त करने के बचाव को 'संभावनाओं की प्रबलता' के सिद्धांत को लागू करते हुए न्यायसंगत और संभाव्य के रूप में स्थापित करना आवश्यक होता है। अपीलार्थीगण का यह बचाव कि 200/- रुपये कर की वसूली हेतु प्राप्त किए गए थे, प्रत्येक अपीलार्थी द्वारा रिश्त की राशि स्वीकार किए जाने के ठोस साक्ष्यों से और भी असत्य सिद्ध हो जाता है। अभियोजन पक्ष का यह साक्ष्य कि प्रत्येक अपीलार्थी से 100/- रुपये बरामद किए गए थे, स्वयं उस बचाव को असत्य साबित करते हैं कि राशि कर की वसूली हेतु जमा किया गया था। यदि वास्तव में ऐसा होता, तो





प्रत्येक अपीलार्थी से 100-100 रुपये की बरामदगी का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था। अतः, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा बचाव को उचित रूप से खारिज कर दिया गया है।"

25. मैंने उन प्रत्येक निर्णयों पर स्वतंत्र रूप से विचार नहीं किया है, जिन्हें अपीलार्थीगण द्वारा उन विभिन्न तर्कों के समर्थन में उद्धृत किया गया था, जिनका वर्णन इस न्यायालय द्वारा ऊपर किया जा चुका है। दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश को कायम रखने के लिए इस न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के आधार पर, अपीलार्थीगण द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों को भिन्न पाया गया है और वे वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं।

26. परिमाणस्वरूप, मुझे दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होता है।

27. अपील असफल होती है और एतद्वारा खारिज की जाती है। अपीलार्थी बलराम सिंह की अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई है, अतः अपीलार्थी- हरीश चंद्र का जमानत-बंधपत्र निरस्त किये जाने का आदेश दिया जाता है। वह विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करे, तत्पश्चात उसे विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दंडादेश के शेष भाग को भुगतने हेतु जेल भेजा जाए।



सही/-

(मनीन्द्र मोहन

श्रीवास्तव)

न्यायाधीश

अनुवादकर्ता - उत्तरा श्रीवास्तव, अधिवक्ता

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।